

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 6 अध्याय 17: चित्रकेतु को शाप

3 October 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



एक देदीप्यमान विमान में आकाश-मार्ग से उड़ते हुए, विद्याधर-राज चित्रकेतु भगवान् शिव को ऋषियों की सभा के मध्य देवी पार्वती के साथ विराजमान पाते हैं — एक ऐसी भेंट जो उन पर शाप लाएगी और, उनकी शान्त स्वीकृति के द्वारा, सच्चे भक्त के गहनतम लक्षण प्रकट करेगी।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्जम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। षष्ठ स्कन्ध का सत्रहवाँ अध्याय चित्रकेतु की कथा को पूर्ण करता है और उस प्रश्न का उत्तर देता है जिससे वह आरम्भ हुई थी। भगवान् शिव और देवी पार्वती के समक्ष एक असावधान टिप्पणी राजा पर शाप ले आती है; फिर भी उनकी निर्दोष, निर्भय स्वीकृति सच्चे भक्त का हृदय प्रकट करती

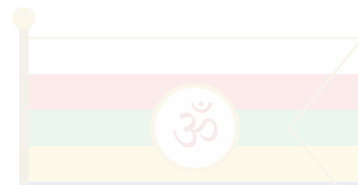
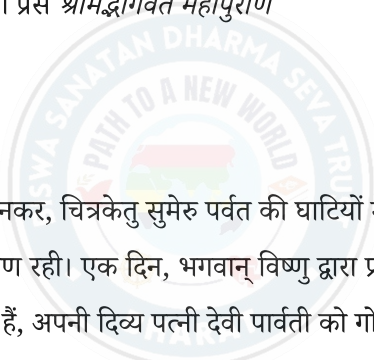
है, और स्वयं भगवान् शिव उनकी स्तुति करते हैं — अन्ततः यह बताते हुए कि यह महान् आत्मा राक्षस वृत्र के रूप में कैसे जन्मी।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 6 (षष्ठ स्कन्ध)
- अध्याय: 17 (सप्तदश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: माता पार्वती का चित्रकेतु को शाप
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए; कथा के भीतर चित्रकेतु, पार्वती तथा भगवान् शिव
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित; बाह्य कथा में नैमिषारण्य के ऋषिगण
- मुख्य स्थल: आकाश तथा कैलास पर भगवान् शिव की सभा
- केन्द्रीय विषय: चित्रकेतु का शाप, उसकी समता, और भगवान् शिव द्वारा भक्त की स्तुति
- मुख्य श्लोक-परिधि: स्कन्ध 6, अध्याय 17, श्लोक 1-41
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

सभा में भेंट

विद्याधरों का अधिपति बनकर, चित्रकेतु सुमेरु पर्वत की घाटियों में विशाल युगों तक विचरते रहे, सिद्धों और ऋषियों से स्तुत होते हुए, श्रीहरि के प्रति उनकी भक्ति अक्षुण्ण रही। एक दिन, भगवान् विष्णु द्वारा प्रदत्त एक देदीप्यमान विमान में उड़ते हुए, वे भगवान् शिव को ऋषियों की सभा के मध्य विराजमान पाते हैं, अपनी दिव्य पत्नी देवी पार्वती को गोद में लिए। भगवान् की महिमा न समझकर, चित्रकेतु खुलकर हँसे और देवी के सुनते एक असावधान, उपहासपूर्ण टिप्पणी कर दी — यह पूछते हुए कि विश्व के गुरु, तपस्वियों के शिरोमणि, भरी सभा में अपनी पत्नी का आलिंगन कैसे कर सकते हैं (श्लोक 1-8)।





चित्रकेतु को अपने स्वामी की महिमा से अनजान देखकर, देवी पार्वती शाप देती हैं कि वह राक्षस-योनि में पुनर्जन्म ले (श्लोक 10-15)।

भगवान् शिव, जिनका मन अथाह है, केवल मुस्कराए और मौन रहे, और सभा में उपस्थित सज्जन भी। किन्तु देवी पार्वती, विद्याधर को अपने स्वामी की महिमा से इतना अनजान और अपने आत्म-संयम पर इतना प्रसन्न देखकर, क्रुद्ध होकर बोलीं। क्या यही एकमात्र लोक-शासक है, उन्होंने पूछा, दण्ड का अधिकारी, जो हम जैसों को सुधारने का साहस करे? उसे, अपने अहंकार में, भगवान् विष्णु के चरणों की शरण के अयोग्य जानकर, उन्होंने शाप दिया: कि वह राक्षस-योनि में पुनः जन्म ले, जिससे वह फिर उन्नत आत्माओं का अपराध न करे (श्लोक 9-15)।

भक्त की समता

यहाँ अध्याय दोष से कृपा की ओर मुड़ता है। शाप सुनकर, चित्रकेतु न क्रुद्ध हुए न भयभीत। वे अपने विमान से नीचे उतरे, सिर झुकाया, और देवी को प्रसन्न किया — शाप से बचने को नहीं, अपितु शुद्ध विनय से। देवता जो भी कहते हैं, उन्होंने कहा, वह निश्चय ही पूर्व-निर्धारित है; और उन्होंने उसे माता के प्रेमपूर्ण उपहार के रूप में हाथ जोड़कर स्वीकार किया (श्लोक 16-17)।

फिर उन्होंने गहन समता के वचन कहे। अज्ञान से भ्रमित आत्मा, उन्होंने कहा, सर्वत्र सुख और दुःख पाती है; न स्वयं और न कोई अन्य वस्तुतः उनका कारण है, क्योंकि केवल मूर्ख स्वयं को या किसी अन्य को उत्तरदायी मानता है। प्रकृति के गुणों के इस निरन्तर प्रवाह में, उन्होंने पूछा, शाप और वरदान में, स्वर्ग और नरक में, सुख और दुःख में भला सच्चा भेद क्या है? (श्लोक 18-20)

गुणप्रवाह एतस्मिन् कः शापः को न्वनुग्रहः ।

कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा ॥ २० ॥

guṇa-pravāha etasmin kaḥ śāpaḥ ko nv anugrahaḥ kaḥ svargo narakaḥ ko vā kiṁ sukhaṁ duḥkham eva vā

अर्थ: प्रकृति के गुणों के इस अविरल प्रवाह में शाप क्या और वरदान क्या, स्वर्ग क्या और नरक क्या, सुख क्या और दुःख क्या? (स्कन्ध 6, अध्याय 17, श्लोक 20)



चित्रकेतु नीचे उतरते हैं और शाप को हाथ जोड़कर स्वीकारते हैं, मुक्ति नहीं अपितु केवल क्षमा की प्रार्थना करते हुए (श्लोक 16-24)।

एक ही भगवान्, उन्होंने आगे कहा, अपनी माया से समस्त प्राणियों को प्रकट करते हैं और उनके बन्धन तथा मोक्ष, उनके सुख तथा दुःख का विधान करते हैं, स्वयं अछूते रहते हुए; उन्हें, जो सबके प्रति समान हैं, न कोई प्रिय है न अप्रिय। इसलिए, चित्रकेतु ने कहा, उन्होंने शाप से मुक्ति की प्रार्थना नहीं की — उन्होंने केवल इतना माँगा कि देवी जो कुछ अनुचित कहा गया समझें उसे क्षमा कर दें (श्लोक 21-24)। इस प्रकार भगवान् शिव तथा देवी पार्वती को प्रसन्न करके, वे अपने मार्ग को चल पड़े, जबकि दिव्य दम्पति विस्मय से देखते रहे।

भगवान् शिव भक्त की स्तुति करते हैं

तब भगवान् रुद्र ने अपनी पत्नी से कहा, देवताओं और ऋषियों, असुरों और सिद्धों के सुनते हुए। तुमने देखा, उन्होंने कहा, श्रीहरि के सेवकों के सेवकों की महिमा, जो प्रत्येक लालसा से मुक्त हैं। जो भगवान् नारायण को समर्पित हैं वे किसी भी ओर से कुछ नहीं डरते (श्लोक 25-28)।

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ।

स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥ २८ ॥

nārāyaṇa-parāḥ sarve na kutaścana bibhyati svargāpavarga-narakeṣv api tulyārtha-darśinaḥ

अर्थ: जो पूर्णतः भगवान् नारायण को समर्पित हैं वे कभी किसी वस्तु से नहीं डरते, क्योंकि वे स्वर्ग, मोक्ष तथा नरक को भी समान दृष्टि से देखते हैं। (स्कन्ध 6, अध्याय 17, श्लोक 28)



भगवान् शिव पार्वती से निर्भय भक्त की स्तुति करते हैं, यह घोषित करते हुए कि नारायण के भक्त स्वर्ग और नरक को समान दृष्टि से देखते हैं (श्लोक 26-35)।

केवल भगवान् की माया से ही, शिव ने सिखाया, आत्माएँ शरीर धारण करती और द्वन्द्वों का अनुभव करती हैं। जो भगवान् वासुदेव को समर्पित हैं और ज्ञान तथा वैराग्य से सुसज्जित हैं, उनके लिए संसार में लालसा योग्य कुछ नहीं। न मैं, उन्होंने कहा, न ब्रह्मा, न महान् ऋषि, न देवताओं के शासक भगवान् का पूर्ण अभिप्राय जानते हैं; उन्हें न कोई प्रिय है न अप्रिय, क्योंकि, समस्त प्राणियों की आत्मा होने के कारण, श्रीहरि सबके प्रिय हैं। यह चित्रकेतु उनका प्रिय सेवक है, समदर्शी और शान्त — और मैं भी अविनाशी भगवान् का भक्त हूँ। इसलिए, उन्होंने समाप्त किया, तुम्हें भगवान् विष्णु को समर्पित जनों के आचरण पर कोई विस्मय नहीं करना चाहिए (श्लोक 29-35)।

चित्रकेतु वृत्र कैसे बने

इस प्रकार उपदिष्ट होकर, देवी पार्वती अपने विस्मय से मुक्त और शान्त हो गईं। यद्यपि प्रति-शाप देने में पूर्णतः समर्थ थे, चित्रकेतु ने देवी का शाप श्रद्धा से स्वीकार किया — क्योंकि ऐसी सहनशीलता ही एक धर्मात्मा का लक्षण है। राक्षस-योनि में डाले गए, वे त्वष्टा द्वारा किए यज्ञ की पवित्र अग्नि से उठे और वृत्र नाम से विख्यात हुए, तब भी आध्यात्मिक ज्ञान और विवेक से सम्पन्न (श्लोक 36-38)।



राक्षस-योनि में डाले गए, चित्रकेतु त्वष्टा की पवित्र अग्नि से वृत्र के रूप में उठते हैं, तब भी आध्यात्मिक ज्ञान से देदीप्यमान (श्लोक 37-38)।

इसके साथ, श्रीशुकदेव ने उस प्रश्न का उत्तर दिया जिससे समूची कथा आरम्भ हुई थी: कि राक्षस वृत्र में इतनी विस्मयकारी रूप से चमकने वाली भगवान् की भक्ति कैसे उत्पन्न हुई। जो भी उन्नत चित्रकेतु की इस पावन कथा को सुनता है, उन्होंने कहा, वह सांसारिक अस्तित्व के बन्धन से मुक्त हो जाता है; और जो प्रातः उठकर, श्रद्धा से इसका पाठ करता और श्रीहरि का स्मरण करता है, वह परम गति प्राप्त करता है (श्लोक 39-41)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. महान् आत्माएँ भी असावधान निर्णय से चूक सकती हैं। चित्रकेतु, एक सिद्ध भक्त, भगवान् शिव का उपहास करके भूल करते हैं, यह दर्शाते हुए कि कोई भी विनय की आवश्यकता से ऊपर नहीं (श्लोक 6-8)।
2. सच्चा भक्त शाप को बिना क्रोध या भय के स्वीकारता है। चित्रकेतु शाप को हाथ जोड़कर स्वीकारते हैं, मुक्ति नहीं अपितु केवल क्षमा की प्रार्थना करते हुए (श्लोक 16-17)।
3. गुणों के प्रवाह में शाप और वरदान एक समान हैं। वे स्वर्ग और नरक, सुख और दुःख में कोई सच्चा भेद नहीं देखते, क्योंकि सब एक ही भगवान् के अधीन प्रकृति की लीला में उठते हैं (श्लोक 20)।
4. नारायण को समर्पित जन किसी से नहीं डरते। भगवान् शिव घोषित करते हैं कि भगवान् के भक्त स्वर्ग, मोक्ष और नरक को समान दृष्टि से देखते हैं (श्लोक 28)।
5. सहनशीलता धर्मात्मा का चिह्न है। प्रति-शाप देने में समर्थ होते हुए भी, चित्रकेतु अपनी नियति को शान्ति से स्वीकारते हैं — और समूची परीक्षा भगवान् की अपनी व्यवस्था सिद्ध होती है (श्लोक 37-38)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

यह अध्याय दो विस्मय समेटे है, एक विनम्र करने वाला और एक सान्त्वना देने वाला। विनम्र करने वाला यह कि चित्रकेतु जैसी उन्नत आत्मा — जिसने एक ही अध्याय पूर्व भगवान् का साक्षात् दर्शन किया था — फिर भी असावधान उपहास में फिसल सकती है, हमें स्मरण कराते हुए कि प्राप्ति की कोई ऊँचाई हमें श्रद्धा और वाणी की सतर्कता से मुक्त नहीं करती। किन्तु सान्त्वना देने वाला विस्मय कहीं बड़ा है। जब शाप गिरता है, चित्रकेतु अपना बचाव नहीं करते, प्रतिकार नहीं करते, विचलित तक नहीं होते; वे झुकते हैं, स्वीकारते हैं, और एक ऐसी शान्ति के वचन कहते हैं जो इतनी गहरी है कि शाप और वरदान उनके लिए एक हो गए हैं, क्योंकि वे दोनों के पीछे भगवान् का एक ही हाथ देखते हैं। और फिर स्वयं भगवान् शिव समूचे दृश्य को प्रकाश में उठा देते हैं, यह प्रकट करते हुए कि यह कभी त्रासदी थी ही नहीं, अपितु भगवान् की अपनी रीति थी अपने सेवक को आगे खींचने की। जो शाप दण्ड-सा सुनाई देता है वह वस्तुतः वह द्वार है जिससे चित्रकेतु वृत्र बनेंगे और, उसी जीवन से होकर, भगवान् के पास लौटेंगे। यही भक्त की गुप्त शक्ति है: यह नहीं कि कठिनाइयाँ कभी नहीं आतीं, अपितु यह कि उसने जीवन को सौभाग्य और दुर्भाग्य में बाँटना छोड़ दिया है, और सब कुछ ईश्वर के हाथ से उसी स्थिर, कृतज्ञ हृदय से ग्रहण करता है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, जब कोई अप्रिय वस्तु आए — एक आलोचना, एक विफलता, एक चुभने वाला शब्द — उसे वैसे ग्रहण करने का अभ्यास कीजिए जैसे चित्रकेतु ने अपना शाप ग्रहण किया: बिना प्रतिकार, बिना घबराहट, और उस क्षण को “अच्छा” या “बुरा” में बाँटे बिना। रुकिए, भीतर से भगवान् को प्रणाम कीजिए, और स्वयं को स्मरण कराइए कि वही दिव्य हाथ आपके सुखों और दुखों दोनों के पीछे चलता है। अपनी वाणी की भी रक्षा कीजिए, विशेषकर उनके प्रति जो भगवान् को समर्पित हैं, और पावन नाम को अपना हृदय स्थिर रखने दीजिए, दिन जो भी आए।

उपसंहार

यह सत्रहवाँ अध्याय चित्रकेतु की गाथा को एक पूर्ण वृत्त में समेट देता है। भगवान् शिव तथा देवी पार्वती के समक्ष एक असावधान टिप्पणी राजा को शाप दिलाती है, फिर भी वे उसे ऐसी निर्भय समता से ग्रहण करते हैं कि स्वयं भगवान् शिव उनकी स्तुति भगवान् के एक प्रिय सेवक के रूप में करते हैं जो शाप और वरदान को समान देखता है। वह शाप वह मार्ग बन जाता है जिससे चित्रकेतु वृत्र के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं, तब भी भक्ति से देदीप्यमान — उस प्रश्न का वही उत्तर जिससे उनकी कथा आरम्भ हुई। जैसे-जैसे यह स्कन्ध अगले अध्याय में मरुतों के जन्म की ओर मुड़ता है, हम इस अध्याय की शान्त शक्ति साथ ले चलते हैं: कि भक्त, सब वस्तुओं में भगवान् का हाथ देखकर, कुछ नहीं डरता और सब कुछ शान्ति से ग्रहण करता है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ तथा साभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), षष्ठ स्कन्ध, सप्तदश प्रवचन।

- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-6-chapter-17-parvati-curses-citraketu-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

